सूरदास की नारी दृष्टि

रूबी त्रिपाठी

सहायक प्राध्यापक (अतिथि संकाय)
हिन्दी विभाग,
आर्य कन्या डिग्री कालेज
(संघटक महाविद्यालय,इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
इलाहाबाद,उ0प्र0, मो. 9696633308

'नारी' के स्थान निर्धारण को लेकर साहित्यकारों की दृष्टि में बड़ी भिन्नता मिलती है। हिन्दी के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य में यह दृष्टि–भेद स्पष्ट लक्षित हुआ है। कवियों के दर्शन में नारी, कभी भोग्या रही तो कभी आदर्श रूपा। कुछ रचना कारों ने उसे 'श्रद्धा' या 'देवी' के पद पर भी आसीन किया है तो कुछ उसे अनंत दुःख भोगने वाली सहधर्मिणी या एक मनोरंजक माध्यम मानकर चित्रित किया है। परन्तु सूक्ष्म आकलन से, चौंकाने वाला एक तथ्य भी उजागर होता है कि महाकवि 'सूर' को छोड़कर अन्य कवियों की नारी विषयक सोच में एक अनजानी साम्यता है और वह यह कि लगभग सभी ने नारी को 'पुरुष' से निचले दर्जे पर रखा है। इस कटु सत्य को तत्कालीन सामाजिक प्रभाव कहकर या परम्परा की दुहाई देकर कवियों को, उनके दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि सामाजिक प्रभावों के बीच भी कवि की अपनी मौलिक और स्पष्ट अवधारणा हुआ करती है, जो देशकाल के प्रभाव से मुक्त होती है। सूर की दृष्टि अस मौलिकता से दीप्त है। सूर के इस दृष्टि औदात्य को परखने के लिए हिन्दी के कुछ कवियों की दृष्टि विवेचन यहां आवश्यक है।

मैथिली कवि 'विद्यापति' ने नारी को संयोग–वियोग से अलग करके देखने की चेष्टा लगभग नहीं की है। नायिका मिलन के लिए आतुर और विरह में प्राणान्तक दुःख झेलने के अलावा कुछ नहीं कर पाती है, 'कुल कामिल छलौं, कुलटा भए, गैलों तिनकर वचन लुभाई। अपने कर हम मूंड़ मुड़ाएल, कानु से प्रेम बढ़ाई।'[1] 'रसलोलुप नायक–भ्रमर के रस–पान के अनंतर, नायिका के पास वेदना, निराशा, ग्लानि और अमर्ष से परिपूर्ण स्मृतियां शेष रह जाती हैं।[2] यहां नारी की जो छवि बनती है वह वासना की पूर्ति का पर्याय है। सामन्ती व्यवस्था में जेड़ी स्त्री को 'दासी' की क्षुद्रता से 'बीसलदेव रासो' का कवि भी मुक्त नहीं करा सका है 'त्रिया जनम् कांई दियो हो नरेस। अवर जनम थारै घणां हो नरेस। '[3] इसीलिए वह नारी की अपेक्षा अन्य योनि में जन्म लेना अधिक श्रेयस्कर समझती है।

संत कबीर ने नारी को ज्ञान के मार्ग की बड़ी बाधा बताया है। कबीर स्त्री की परछाईं तक से बचने की सलाह देते हैं 'नारी की झाईं परत, अंधा होत भुजंग। कबीरा तिनकी कौन गति, जै नित नारी संग'[4]। एक तरफ कबीर ने स्पष्ट रूप से नारी के महत्व को नकारा है वहीं दूसरी ओर उन्होंने संसार को प्रेम का घर कहा है। जीव और जीव के भेद को अनुचित माना हैं। उनकी इस परिभाषा में हरिजन या ब्राह्मण तो जीव है पर नारी नहीं। एक महत्वपूर्ण बात

Scanned with CamScanner

यह भी है कि निर्गुण की आराधना करते हुए वे स्वयं को नारी रूप में ही कल्पित करते हैं, 'सखी गावहु मंगलचार, मेरे घर आए राजाराम भरतार।'[5] इसी प्रकार पद्मावत के रचनाकार जायसी ने भी नागमती और पद्मावती का एक साथ सती होना दिखाकर यह सिद्ध कर दिया कि पुरुष के बिना नारी का अस्तित्व व्यर्थ है।

महाकवि तुलसीदास ने अपनी पत्नी रत्नावली (नारी) की प्रेरणा से ही महाग्रन्थ रामचरितमानस को लिखने में सफल हुए। फिर भी उन्होंने नारी को कमतर माना है। रामचरितमानस के नारी पात्र आदर्श हैं परंतु ये पात्र स्वनिर्णय में स्वतंत्र नहीं है। जहां कहीं ऐसे क्षण आए हैं तो महाकवि ने उनके निर्णयों को अनुचित करार दिया है। जैसे– श्रीराम को वन में मिलने वाले दुःखों का मूल, सीता को माना गया है जो स्वनिर्णय से राम के साथ वन को जाती है। वहीं पर उर्मिला (लक्ष्मण की पत्नी) की मनोव्यथा को समझने के लिए कोई अवकाश नहीं है।

कवियों के दर्शन में नारी, कभी भोग्या रही तो कभी आदर्श रूपा। कुछ रचनाकारों ने उसे 'श्रद्धा' या 'देवी' के पद पर भी आसीन किया है तो कुछ लोगों ने मनोरंजक माध्यम मानकर चित्रित किया है। परन्तु सूक्ष्म आकलन से, चौंकाने वाला एक तथ्य भी उजागर होता है कि महाकवि 'सूर' को छोड़कर अन्य कवियों की नारी विषयक सोच में एक अनजानी साम्यता है और वह यह कि लगभग सभी ने नारी को 'पुरुष' से निचले दर्जे पर रखा है।

इस कटु सत्य को तत्कालीन सामाजिक प्रभाव कहकर या परम्परा की दुहाई देकर कवियों को, उनके दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि सामाजिक प्रभावों के बीच भी कवि की अपनी मौलिक और स्पष्ट अवधारणा हुआ करती है, जो देशकाल के प्रभाव से मुक्त होती है।

इसी प्रकार रीतिकालीन कवि भी आदिकालीन कवियों की भांति परम्परा से इतर कोई अन्य दृष्टि विकसित नहीं कर सके। दरबारी वातावरण में, आश्रयदाताओं के मनोरंजन हेतु नारी के कामोत्तेजक रूप की प्रस्तुति ही इन कवियों ने दोहराई। पद्माकर, बिहारी आदि कवियों ने उसे श्रृंगार की सामग्री माना है 'सुख सों बीती सब निसा, मनु सोए मिलि साथ। मूका मेलि गहे सु छिन, हाथ न छोडे हाथ।'[6]

मैथिलीशरण गुप्त जी को अवश्य क्रांतिकारी कहा जा सकता है। वे एक मात्र ऐसे कवि

हैं। जिन्होंने साहित्य उपेक्षित, विरहिणी उर्मिला के प्रति सहानुभूति जताकर प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच भी नारी संबंधी अपनी मनोवैज्ञानिक अवधारणा को स्थापित किया है। क्योंकि सन् 1930 तक (साकेत का रचनाकाल) भारतीय समाज में राजनैतिक रूप से नारी जागरण के प्रयास भले ही प्रारंभ हो चुके थे परन्तु देहरी के भीतर के नारी से यह बदलाव बहुत दूर था। साकेत में गुप्त जी ने नारी के मन को समझने की चेष्टा की है जो उल्लेखनीय है परन्तु उनके दृष्टि से ऐसा कुछ छूट गया है जो उनके विचारों को अधिक व्यापकता देता। उर्मिला को अधिक से अधिक स्वतंत्रता और विकास के अवसर देने की छटपटाहट तो उनमें है परन्तु उससे आगे मुक्ति का मार्ग वे नहीं खोल पाए हैं।

Scanned with CamScanner

जयशंकर प्रसाद जी ने 'श्रद्धा' और 'इड़ा' को आदर्श में लपेटकर प्रस्तुत किया है। कमजोर, कुंठित मनु ने इन दोनों को जितना दुःखी कर सकते थे, किया है। श्रद्धा और इड़ा के महत्व को जब तक समझते, बहुत देर हो चुकी होती है। अपने यौवन का लम्बा काल श्रद्धा, अकेले पुत्र के सहारे व्यतीत करती है। 'प्रसाद' ने भले ही श्रद्धा के विरह का बारहमासा प्रस्तुत नहीं किया पर पाठकों से यह सच्चाई छिपी भी नहीं है। अन्तर इतना है कि साकेत के लक्ष्मण उर्मिला को बताकर वन गए थे और मनु बिना कहे पलायन कर गये थे। ऊपर से प्रसाद जी का यह प्रयत्न रहा है कि मनु को पाठकों की पूर्ण सहानुभूति मिले। श्रद्धा या इड़ा के प्रति उनका ऐसा प्रयास कहीं नहीं दिखाई देता। सुंदर श्रद्धा कामायनी की एक मात्र उपदेशक है। कभी वह मनु को कर्म का उपदेश देती है तो कभी, कैलास पर्वत से ज्ञान और कर्म–क्षेत्र के दर्शन करवाती है। प्रसाद जी यह क्यों भूल गए कि, मनु की तरह श्रद्धा भी मानव है केवल आदर्शवादी उपदेशक नहीं। 'कामायनी' के पंद्रह सर्गों में निबद्ध उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी श्रद्धा को इस आदर्शवाद के चंगुल से नहीं छुड़ा पाया है।

महाकवि 'निराला' और 'पंत' की नारी अधिकांशतः प्रकृति के पुष्प–बल्लरियों के अधिक निकट है। 'पत्थर तोड़ती– जैसी गिनी चुनी कविताओं को छोड़ दें तो वहां सिर्फ कोमलता ही कोमलता है। उनकी नारी में वो जुझारूपन का अभाव है जो जीवन की कठोर भूमि पर अपने निर्णयों को दृढ़ता से स्थापित कर सके। इसी प्रकार महादेवी वर्मा के गीतों में 'नीर भरी दुःख की बदली'[7] का आशय भी कुछ न कर पाने की छटपटाहट ही है। प्रयोगवादी कवि 'अज्ञेय' को नारी विषयक अवधारणा सप्रयास है। उसमें स्वाभाविकता की कान्ति नहीं है।

सूर इन सबसे निराले हैं। सूर को हम जन्मान्ध कहें या दुर्घटनावश पर यह सच है कि लौकिक आंखों के बिना भी उन्होने नारी को जिस रूप में देखा है वह पूर्णत मानवी है। सूर ने न तो नारी को देव–पद पर चढ़ाया है और न ही पद–रच में ढकेला है।

पूरे सूरसागर में कहीं भी उनकी नारी (नायिकाएं) कृष्ण से राई रत्ती भी कम नहीं आंकी गई हैं। सूर ने उसे कृष्ण (पुरुष) के समकक्ष स्थान दिया है जो उनकी वैचारिक उदारता का परिणाम है। युगीन परिस्थितियों की दृष्टि से देखें तो लगभग वही सामाजिक स्थितियां सूर के समय थी जो जायसी या तुलसीदास के युग में थी। ये दोनों महाकवि नारी को 'दासी' के दासत्व से मुक्त नहीं करा सके पर सूर के लिए 'नारी' दासी नही सखी है। एक अंतरंगा है जिससे अपने मन की बात कहकर पुरुष अधिक मुक्त होता है। उसे अपने हर क्रिया कलाप में सम्मिलित कर आनंद का अनुभव करता है। ब्रज के हर पर्व में गोपिकाओं की सहभागिता बराबरी की हैं 'हरि संग खेलत हैं सब फाग .....। छिटकतिं सखी, कुमकुमा केसरि, भुरकति बंदन धूरि। सोभित है तनु सांझ–समै–घन, आए हैं मनु पूरि। दसहुं दिसा भयौ परिपूरन, सूर प्रसंग प्रमोद। सुर विमान कौतूहल भूले, निरखत श्याम विनोद।[8]

सूर की मानवीयता देखिए कि वे नारी पर न तो किसी प्रकार का लांछन लगाते हैं न ही, उसे दुःख का मूल मानते हैं। उनकी नारी, रंगमहल या रनिवास की दीवारों में कैद स्त्री नहीं है। नारी के प्रति सूर के मन में किसी प्रकार का संदेह नहीं है। व्रज की गोपिकाएं मध्य रात्रि में भी कृष्ण की मुरली सुनकर वन को दौड़ जाती हैं। वहां किसी प्रकार की मलिनता नहीं है। उनकी पवित्रता के प्रति सूर आश्वस्त हैं। घर–गृहस्थी का सारा भार सम्हालते हुए भी

Scanned with CamScanner

गोपिकाओं का कला और सात्विक प्रेम के प्रति ऐसा आकर्षण, एक विलक्षण अनुभूति है जिसे मात्र 'सूर' अनुभूत कर सके हैं। सूर की गोपिकाएं छटपटाने के लिए विवश नहीं हैं। वे स्वतंत्र निर्णय में समर्थ हैं। उनकी अपनी 'आस्था' है। अपने तर्क हैं जिनके सामने कोई नहीं टिक पाता है। उद्धव का पांडित्य उन्हें आतंकित नहीं करता बल्कि वे ही उद्धव की कोरी विद्वता का उपहास करती हैं। 'कायर बकै लोह से भाग, लड़ैते सूर बखानै।[9] गोपिकाओं के सटीक तर्क से उद्धव खड़े हो जाते हैं। वे अपने व्यंग्य बाणों से उद्धव को घायल कर देती हैं 'दादुर बसै निकट कमलन के, जन्म न रस पहिचानै'[10] निर्गुण महिमा का बखान करने वाले उद्धव को वे बहुत फटकारती हैं। उनकी सगुण भक्ति किसी 'योग' से कम नहीं है इस बात की घोषणा वे बड़े आत्मविश्वास से करती हैं 'हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ। मन–बच–क्रम, हरि सौं धरि पतिव्रत, प्रेम जोग तप साध्यौ'[11] गोपिकाओं की प्रत्युत्पन्नमति उद्धव को अवाक कर देती है। सिवाय पछतावे को उद्धव के हिस्से में कुछ शेष नहीं रह जाता –'ऊधो मन साधि रहे। योग कहि पछितात मन–मन, बहुरि कछु न कहैं।'[12]

सूर की गोपिकाएं परिस्थितियों से समझौता नहीं करती। कृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात उत्पन्न विरह की स्थिति, व्याकुलता वस्तुतः समझौता नहीं, वरन उनके आत्मनियंत्रण की परीक्षा की घड़ी है जो गोपिकाओं ने स्वयं निर्मित की है अन्यथा मथुरा से ब्रज के बीच की दूरी तो मात्र तीन कोस ही है जिसे गोपिकाएं चाहती तो सहज लांघ सकती थीं पर वे, अपने इस निर्णय पर अटक जाती हैं कि 'इस निरावलम्ब दशा में भी वे दूसरे किसी का आश्रय नहीं चाहती–अन्त तक कृष्ण की ही बनकर रहेगी, चाहे जो हो जाए।[13] गोपिकाओं की प्रेम साधना बहुत बड़ी है। वह निष्ठा अभिनंदनीय है, जो एक की होकर दूसरे का मुंह नहीं देखती; वह व्रत वंद्य है जो मृत्यु का सामना करके अमर बनाता है।[14] वस्तुतः सूर की गोपिकाओं का प्रेम अत्यंत गूढ़ है। कायिक आकर्षण उन्हें प्रेमपथ से डिगा नहीं पाता। उनका आत्मविश्वास दृढ़ है। सूर की नारी अपनी सहज स्वाभाविक बुद्धि से निर्गुण के उलझे जाल को सुलझाने की सामर्थ्य रखती है। गोपिकाएं संयोग में सद ृश्य कृष्ण तथा वियोग में अदृश्य कृष्ण की उपासिका हैं। उनकी विशुद्ध भक्ति में साकार निराकार की कोई उलझन नहीं है।

ब्रज की नारी, ब्रज की संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। ब्रज में होने वाले हर तीज–त्योहार में उसकी भागीदारी महत्वपूर्ण है। जन्मोत्सव, अन्नप्राशन, गोवर्धन पूजा, रासलीला, फागपर्व, वसंतोत्सव आदि सभी में गोपिकाएं बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेती हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि कृष्ण भी अपनी बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक के विकास में इन्हीं गोपिकाओं का आश्रय लिए दिखाई देते हैं। 'गोकुलनाथ विराजत डोल। संग लिए वृषभानु नंदिनी, पहिरे नील निचोल। कंचन खचित लालमनि मोती, हीरा जटित अमोल। झुलवहिं जूथ मिलै ब्रज सुंदरि, हरषित करति कलोल'[15]

स्पष्ट है कि सूर ने अपनी व्यापक विचारणा से नारी को पूर्ण मानव का दर्जा देने और उसे पुरुष के समकक्ष स्थापित करने की पहल की है। वे ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने नारी की शक्ति, बुद्धि कौशल और कार्यक्षमता पर पूर्ण आस्था व्यक्त की है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. गुप्त गणपति चन्द्र, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, पृष्ठ 245

Scanned with CamScanner

2. वहीं
3. वहीं
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास–भाषा, संस्कृति और चिंतन, म0प्र0उ0शि0 अनुदान आयोग, भोपाल, पृष्ठ 17
5. डा. जैन कान्ति कुमार, कबीरदास, पृष्ठ 95
6. डा. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास
7. वर्मा महादेवी, परिक्रमा
8. सं0 डॉ. धीरेन्द्र शर्मा, सूरसागर सार, पृष्ठ 123
9. सं0 डॉ. शर्मा मुन्शीराम, सूर संचयन, पृष्ठ 79
10. वहीं पृष्ठ 77
11. वहीं पृष्ठ 79
12. वहीं पृष्ठ 79
13. बाजपेयी नंद दुलारे महाकवि सूर, पृ0 166
14. वहीं 166
15. सं.डा0 वर्मा धीरेन्द्र, सूरसागर सार, पृष्ठ 123

Scanned with CamScanner